ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.19, No.4, Oct. – Dec., 2024/14

गुप्तकाल में भू–राजस्व व्यवस्था : एक पुनरावलोकन

महेन्द्र पाठक, एवं अजय मिश्र

https://doi.org/ 10.61410/had.v19i4.206

विशाल केन्द्रीकृत मौर्य सत्ता के पराभव के पश्चात् भारत की जर्जर राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाते हुए विदेशी आकान्ताओं ने लगातार इस भू– भाग पर अपना अपना अधिपत्य जमाया हैं। इस राजनैतिक विसंगति को समाप्त करने के लिए भारत के तीन भाग से तीन राजवंशो – पश्चिम में नाग राजवंश , द. में वाकाटक और पूर्व में गुप्त राजवंश का अभ्यूदय हुआ। इन तीनों राजनैतिक शक्तियों ने विदेशी शक्तियों को पराजित करके भारत में नवीन राजनीतिक धारा का प्रतिपादन किया। यदि इन शक्तियों में ही पारस्परिक द्वन्द्व या कलह होता तो सम्भवतः इस उद्देश्य को सफलता न मिल पाती किन्तु गुप्त राजसत्ता का महत्व इस तथ्य में निहित है कि गुप्तशासकों ने अपनी कूटनीतिक योग्यता का परिचय देते हुए इन शाक्तियों को वैवाहिक सूत्र में अनुबन्धित कर परोक्ष या अपरोक्ष रूप में इन सबको अपना नेतृत्व प्रदान करते हुए एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया। स्मिथ के अनुसार इस वैवाहिक सम्बंध के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों का राज्य प्राप्त कर लिया तथा मगध एवं उसके सीमावर्ती क्षेत्र का सार्वभौम शासक बन गये।[1]

गुप्तकालीन शासक इस बात से भॅंली भाति परिचित थे कि प्रजा से उतना ही कर लेना चाहिए जितना कि वह आसानी से दे सके और उसके पास भावी उत्पादन के लिए पर्याप्त धन बचा रहे। कामंदक[2] ने इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए एक माली और ग्वाले की उपमा दी हैं, जैसे माली फूल के पौधों में पानी देता है फिर फूल तोड़ता हैं, जिस प्रकार ग्वाला गायों की सेवा करता है, फिर उनका दूध निकालता हैं, उसी प्रकार राजा को प्रजा की रक्षा और सहायता करनी चाहिए तथा फिर उससे कर वसूलना चाहिए। कालिदास[3] ने कहा है जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से बहुत कम मात्रा में जल लेता है तथा उसका हजार गुना उसे वापस करता हैं, ठीक वैसे ही राजा को प्रजा से बहुत कम भाग कर के रूप में लेना चाहिए और उसका कई गुना प्रजा के कार्यो में उसे लगा देना चाहिए।

राजा द्वारा जनता से कर वसूल करने का मूल उद्देश्य प्रजा हित था। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि राजा प्रजा की सुरक्षा के बदले जनता से कर वसूल करती थी। आधुनिक अर्थशास्त्री एवं अर्थशास्त्र के जनक माने जाने वाले एडम स्मिथ का विचार है कि –'' प्रत्येक राज्य की प्रजा की सरकार की सहायता के लिए जहाँ तक सम्भव हो सके उस राजस्व के अनुपात में अशंदान करना चाहिए, जिनका उपयोग वे राज्य की छाया में करते हैं। किसी महान राज्य के नागरिकों के प्रति सरकार का व्यय किसी भी बड़ी सम्पदा (इस्टेट) के संयुक्त स्वामी के व्यवस्था खर्च की तरह है जिसमें सभी को राज्य में अपने अपने हित के अनुपात में अंशदान करना हैं।[4] गौतम के अनुसार कर राजा द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा के बदले भुगतान किये जाते हैं।[5] नारद के अनुसार शाही राजस्व, राजा को अपनी प्रजा की सुरक्षा के लिए प्राप्त प्रतिफल हैं।[6] घोषाल[7] तथा अन्य विधिवेत्ताओं का मत है कि प्राचीन हिन्दू धर्मग्रंथों में प्रतिपादित कराघान और सुरक्षा का पारस्परिक सम्बंध कराधान के तथा कथित पारिश्रमिक सिद्धान्त का ही महत्वपूर्ण पूर्वाभास हैं। प्राचीन भारत में शासको ने प्रजा के सहयोग से ऐसी कर प्रणाली का अनुसरण किया, जिससे उनके राज्य में विविध साधनों से होने वाली आय को अन्ततः साम्राज्य में लोककल्याण हेतु प्रयुक्त किया जाता था। इस दृष्टि से लगाये गये करो में भूमि से सम्बधित कर, वाणिज्य कर आदि प्रमुख थे, लेकिन भू–राजस्व राज्य की आय का मुख्य आधार था।[8] गुप्तकालीन शासक इस बात से भली– भाँति परिचित थे, कि प्रजा से उतना ही कर लेना चाहिए जितना की वह सरलता से दे सके और उसके पास भावी उत्पादन के लिए पर्याप्त धन बचा रहें।[9]

पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, का.सु. साकेत स्नात्तनकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या
शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, का.सु. साकेत स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

शासकीय व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु अर्थ की व्यवस्था अति आवश्यक होती हैं। इसके लिए विधिवेत्ताओं ने प्रज्ञा से ''कर'' प्राप्त करने की विधान किया हैं, जिससे शासन व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित हो सके। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशास्ति[10] के अनुसार सम्राट समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के सांमतो को पराजित किया और दक्षिणापथ के विजित राजाओं को कर देने के बाद मुक्तकर दिया। **''सर्वकरदान ज्ञाकरण प्रणामागन परितोषित प्रचण्ड शासनस्य।''** इस प्रसंग में 'कर' शब्द में सामान्य कर के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हैं। गुप्त शासकों के अभिलेख में कर शब्द का प्रयोग राजस्व के लिए सामान्य रूप से हुआ जबकि गुप्तकाल से पहले के अभिलेख में 'कर' एक विशेष प्रकार का राजस्व था, जो नियमित नही था,[11] किन्तु गुप्तकाल में इस शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा था। प्रयागराज में स्थित प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित शब्द ''सर्व्वकरदान''[12] से ज्ञात होता है कि 'कर' शब्द सभी प्रकार की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। समुद्रगुप्त के गया से प्राप्त कूट ताम्रपत्र में **''करद कुटुम्बिकारूक आदयः''** से भी 'कर' शब्द के सामान्य राजस्व का ही बोध होता हैं।[13] गुप्तकाल में 'कर' शब्द का स्वरूप पूरी तरह से स्थिर नहीं हो सका था और यह एक तरफ राजस्व का सामान्य रूप से पर्याय बनता गया तो दूसरी तरफ इसका पहले के समान विशेष अर्थ में प्रयोग भी कहीं – कहीं अभिलेखों में होता रहा। यही कारण है, जहाँ इसका प्रयोग विशेष अर्थ में है, वहाँ यह पीड़ादायक माना गया। उदा. के लिए पृथिवी विग्रह के काल के सुमण्डल ताम्रपत्र[14] में '' सर्व्वकर – पीड़ा– वर्ज्जितः '' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो कि रूद्रादामन के जूनागढ़ अभिलेख के ''अंपीडयिव्वा कर– विष्टि – प्रणय क्रियाभिः'' की याद दिलाता हैं। 'कर' शब्द जहाँ भी राजस्व विषयक अन्य शब्दों के साथ प्रयुक्त हुआ है, वहाँ इसका प्रयोग राजस्व के विशेष स्त्रोत के रूप में ही दिखाई देता हैं जैसे ''शुल्क भाग कर हिरण्यदि प्रत्याय''[15] ''भाग भोगकर हिरण्यावातादि प्रत्याय''[16] में कर शब्द का प्रयोग विशेष प्रकार के राजस्व के लिए ही हुआ है लेकिन गुप्तकाल के ही अभिलेखों में कर'' सामान्य रूप से सभी प्रकार के राजस्व के लिए भी प्रयुक्त दिखाई देते हैं, उदाहरणार्थ तिवरदेव के रजिम ताम्रपट्ट अभिलेख[17] में ''सर्व–कर आदान– समेतो'' (सभी प्रकार का कर प्राप्त करने का अधिकार) राज्य ने दान प्राप्त करने वाले को दे दिया। इसी प्रकार जयराज के अंरग ताम्रपट्ट अभिलेख[18] में तथा सुदेवराज के रायपुर ताम्रपट्ट अभिलेख[19] में '' सर्व्व–कर–विसर्ज्जितः'' अर्थात् ''सभी प्रकार के राजस्व से मुक्त शब्दों का प्रयोग हुआ हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह बात प्रमाणित होती है कि 'कर' शब्द राजस्व का सामान्य पर्याय बन चुका था। इसके अतिरिक्त गुप्तकाल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख भूराजस्व कर इस प्रकार हैं–

<u>भाग–भोग –</u> भूराजस्व के रूप में 'भाग– भोग का उल्लेख अर्थशास्त्र[20] में किया गया है। मौर्योत्तर काल में हम देखते है कि मनुस्मृति[21] में कहा गया हैं –

''पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्योः।

धान्यानामष्टयो भागः षष्ठो द्वादश एव वा।''

पाल शासक देवपाल का नालंदा ताम्र पत्राभिलेख[22] तथा सर्वनाथ का कोह ताम्रपत्राभिलेख[23] में भी इसका उल्लेख मिलता हैं।

ब्राह्मणों को दिये गये भूमिदान के प्रसंग में 'भाग–भोगकर'[24] तथा भोगभाग'[25] शब्द प्रयुक्त होते है लेकिन भाग का प्रयोग गुप्तकाल के अभिलेखो में अनेक बार उल्लिखित हैं, किन्तु कहीं भी यह नहीं स्पष्ट किया गया है कि भाग नामक राजस्व की दरें क्या थी। ऐसा माना जाता है यह भूमि की उपज का 1/6 (षड्भाग) रहा होगा। मानियर विलियम्स के संस्कृत – अंग्रेजी शब्दकोश के आधार पर फ्लीट ने 'भाग–भोगकर' को एक समास पद माना है और 'भाग का भोग' अर्थ किया[26] और इसी आधार पर 'भोग भाग' शब्द की व्याख्या ''भोग और भाग'' तथा 'भाग का भाग' व्याख्या प्रस्तुत की।[27]

भाग शब्द उपज से प्राप्त राजस्व अथवा षड्भाग का घोतक है किन्तु फ्लीट का यह कथन है कि भोग शब्द का अर्थ उपभोग या उपयोग है,स्वीकार्य नहीं किया जा सकता हैं। ध्यान रहें कि भोग शब्द राजस्व विषयक अन्य शब्दों के साथ प्रयुक्त हुआ है , उदा0 के लिए महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र में ' भागभोगकर हिरण्यादि प्रत्याय[28] वाक्यों का प्रयोग मिलता हैं। इससे यह मत प्रकट होता है कि अन्य शब्दों की तरह भोग भी राजस्व को घोतन करने वाला शब्द हैं।

सामान्यतया यह माना जाता है कि बलि शब्द साहित्य में भाग के स्थान पर प्रयुक्त होता था। जैसा कि हमने उपर्यक्त देखा विष्णु संहिता में , जो कि गुप्तकालीन रचना है, बलि का उल्लेख राज्य के प्रमुख राजस्व के स्त्रोत के रूप में किया गया है जोकि 1/6 होता था। इसी अर्थ में बृहस्पति स्मृति तथा महावंस में भी जो गुप्तकालीन रचना है, बलि शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे यही ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र का बलि नाम का राजस्व अभिलेखो के भाग से अभिन्न हैं।[29] भोग शब्द का सम्बन्ध उस व्याख्या से है, जिसने प्राचीन भारत में सांमतवाद को जन्म दिया। अर्थात् राजा द्वारा प्रदत्त भूमि ने धीरे–धीरे सामंतवाद की व्यावस्था को बढ़ावा दिया।

राजकीय कर्मचारियों की जो ग्रामशासन से सम्बद्ध होते थे, अपनी प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति ग्रामीण क्षेत्रों से ही होती थी। इस आपूर्ति ने ही क्रमशः नियमित राजस्व के रूप ग्रहण कर लिया, बाद में यह शब्द उस क्षेत्र का द्योतन करने लगा जिससे यह ग्रामीण कर्मचारी सम्बद्ध होते थे। महाराज हस्तिन एवं सर्वनाथ के भूमरा पाषाण स्तम्भ लेख में महाराज सर्वनाथ भोगे' वाक्य में भोग शब्द निश्चय ही क्षेत्र विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ हैं। इसी भोग शब्द से भुक्ति (राज्य का एक भाग) तथा भोगिक (एक राजकीय कर्मचारी) शब्द निष्पन्न हुए हैं।[30] भोग के विषय में सलातूर[31] महोदय का मानना है उस समय इस प्रकार की प्रथा थी जिसमें राजा को नित्य भोग दिया जाता था। इसके अतिरिक्त एक अन्य अनुमान यह लगाया जाता है कि भोग कदाचित वह कर था जिसे वाकाटक शासन[32] में 'ग्राम मर्यादा' अर्थात् ग्राम द्वारा दिया जाने वाला वैधानिक देय स्वीकार्य किया जाता था। आधुनिक विचारक डी0सी0 सरकार[33] का मत है कि यह उपज का एक राजकीय अंश होता हैं। भूमि की उपज मे से जो हिस्सा राजा को कर के रूप में दिया जाता था, उसे भाग कहा जाता था। अल्टेकर[34] के अनुसार भोग उन छोटे– छोटे करों का घोतक है जो प्रतिदिन राजा को दिये जाते थे। राजा दौरे के समय यह कर फल, शाम आदि के रूप में ग्रहण करता था। अतः भोग प्रतिदिन नियमित रूप से प्रादेशिक अधिकारियों की आय का एक साधन था।

इस प्रकार भाग– भोग के संदर्भ में डी0सी0 सरकार[35] महोदय का मत विचारणीय है कि यदि यह एक ही कर का वाचक हैं। (न कि भाग, भोग और कर का) तो यह भाग (अन्न भाग) और भोग सामयिक भेंट के बदले लिया जाने वाला कर होगा।

<u>**उपरिकर उंद्रग –**</u> गुप्तकालीन अभिलेखो में भूराजस्व के सम्बंध में उपरिकर तथा उंद्रग का उल्लेख मिलता हैं।[36] इस कर का वर्णन गुप्तकाल से पूर्व किसी स्त्रोत में नहीं हुआ है किन्तु इस काल के किसी भी स्त्रोत से न तो यह ज्ञात हो पाता है कि इन शब्दों का अर्थ क्या है और न ही यह सूचना मिल पाती है कि यह किस प्रकार के राजस्व थे। अभिलेखों में जिस रूप में उपरिकर एवं उंद्रग का उल्लेख हुआ है, उस प्रसंग के आधार पर मात्र यही निर्धारित हो पाता हैं कि इसका आधार ग्रामीण क्षेत्र पर ही होता था। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि राजस्व विषयक ये दोनों ही शब्द एक साथ ही प्रयुक्त हुए है अतः इनका एक–दूसरे से प्रगाढ़ सम्बंध भी रहा होगा। द्रांमिक नाम के एक कर्मचारी का उल्लेख महाराज धरसेन–II के मलिय ताम्रपट्ठ अभिलेख[37] में हुआ हैं। यह क्षेत्र जूनागढ़ के निकट स्थित है लेकिन उपरिक एवं औद्रंगिक नाम के कर्मचारियों का वर्णन गोपचन्द्र के काल के मल्ल सारूल ताम्रपट्ठ के अभिलेख में हुआ है जो कि बर्दवान जनपद में स्थित है किन्तु मलिय ताम्रपट्ट के उपर्युक्त अभिलेख द्रागिक नामक कर्मचारी के संबंध में फ्लीट ने ब्यूलर के मत का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार द्रांगिक शब्द द्रंग से निर्मित है और यह कस्बो या नगरों का अधिकारी होता था।[38]

उद्रंग – उपरिकर की राजस्व विषयक स्थिति देवपाल के नालन्दा ताम्र पत्राभिलेख (चौथी राती, विहार)[39] महाराज हस्तिन के जबलपुर ताम्रपत्राभिलेख[40] (5वीं शदी, म.प्र.) आदि के द्वारा स्पष्ट होती हैं। आधुनिक इतिहासकार अल्टेकर[41] महोदय का विचार है कि उद्रंग तथा भाग और उपरिकर तथा भोग एक ही है, जो कि खाद्य सामग्री के रूप में देय थे। अभिलेखीय साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि ऐसी मान्यता भ्रान्तिपूर्ण हैं। इस दृष्टिकोण से जयनाथ का कारीतलाई ताम्रपत्राभिलेख[42] (5वीं शती, म.प्र.) में उद्रंग– उपरिकर तथा भाग–भोग कर का एक साथ वर्णन विचारणीय हैं। इस दृष्टिकोण से उद्रंग का न तो भाग के साथ और नही उपरिकर का भोग के साथ मिलाया जा सकता हैं। इस प्रकार इन शब्दों को भिन्न– भिन्न करों के रूप में ग्रहण करना ही युक्तिसंगत दिखाई पड़ता हैं।

यू.एन. घोषाल[43] महोदय का मत है कि उद्रंग स्थायी किसानों से और उपरिकर अस्थायी किसानों से वसूल किये जाने वाला भूराजस्व था लेकिन उनके इस मत से कई विद्वान असहमत हैं। इसके सम्बंध में फ्लीट[44] महोदय का मत है कि यह राजा के लिए एकत्र उपज का अंश है तथा उपरिकर को अतिरिक्त अर्थ में 'उपरि' शब्द से व्युत्पन्न मानकर कृषकों से उद्रगृहित अतिरिक्त 'कर' के रूप में लिया है, जिन्हें भूमि पर सम्पत्तिक अधिकार नहीं था। दिनेश चन्द्र सरकार[45] का विचार है कि उद्रंग स्थायी कास्तकारों पर कर था, जो अनाज के रूप में कम से कम कुछ क्षेत्रों में दिया जाता था। सामान्यतया उपरिकर के साथ इसका उल्लेख किया जाता हैं। इस प्रकार उपरिकर का सम्बंध अस्थायी कास्तकारों द्वारा दिये गये कर से है। एस के मैती[46], दिनेशचन्द्र सरकार महोदय के इस मत से सहमत है लेकिन उनका मानना है कि उद्रंग पुलिस कर भी हो सकता है जो कि स्थानीय पुलिस के खर्च के लिए प्रजा से लिया जाता था। फ्लीट ने मराठी शब्दाकोश के आधार पर 'उपरि कर' में 'उपरि' या उप्री का प्राकृत शब्द माना है और उपरि कर को ऐसा राजस्व माना है जो कि उन कृषकों से प्राप्त किया जाता था जिनका भूमि पर वैधानिक स्वत्व नहीं होता था।[47] उद्रंग के विषय में सर्वप्रथम ब्यूलर ने शाश्वत कोष के आधार पर यह कहा कि यह शब्द उद्वार एंव उदग्रन्थ से अभिन्न है और इसे स्वीकार करते हुए फ्लीट ने यह कहा कि इसका अर्थ होता है – ''उपज का वह भाग जो सामान्य रूप से राजा के लिए प्राप्त किया जाता हैं[48]।

सन्दर्भ –ग्रन्थ :

1. स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृष्ठ -279
2. कामन्दक 5, 84 पृष्ठ -29
3. रघुवंश 1/8
4. एडमस्मिथ, दि वेल्थ ऑफ नेशन्स ई कन्नन (सं) न्यूयार्क, 1904 पृष्ठ -310
5. गौतम, x , 28
6. नारद, XVIII 48
7. हि. के. सि. पृष्ठ -273
8. के. के. मिश्रा, प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था पृष्ठ -120
9. ओमप्रकाश सिंह, प्राचीन भारत का सामाजिक एंव आर्थिक इतिहास पृष्ठ -61
10. जे. एफ. फ्लीट, कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम,भाग–3 नं0 – 1
11. रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख
12. जे.एफ. फ्लीट कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम,भाग– 3 पंक्ति– 22

13. वही, पेज 257 पंक्ति–13
14. सरकार सेलेक्ट इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम, सं0 – 71 बी, पेज– 491
15. फ्लीट कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम, भाग – 3 सं. 27, पंक्ति।। पृष्ठ -122,पृष्ठ -127, पृष्ठ &131
16. वही, सं– 31 पंक्ति 14–15, पृष्ठ – 137
17. वही सं. 81 पं. 22 पृष्ठ – 295
18. वही, सं. 40 पं.9 पृष्ठ – 193
19. वही सं. 41, पंक्ति 9, पृष्ठ–198
20. अर्थशास्त्र 5/6
21. मनुस्मृति 8/130
22. समुचितभाग भोगकर हिरण्यदि ....। एपिग्राफिया इण्डिका ,भाग–17, पेज– 322
23. समुचितभागभोगकर हिरण्यदि ....। डी.सी. सरकार, पूर्वोद्रत, भाग 1, पृष्ठ – 392
24. फ्लीट कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम, भाग – 3 सं0 26, पृष्ठ –118 पृष्ठ , 194
25. वही , सं0 39, पृष्ठ – 179
26. वही, पृष्ठ -120 पाद टिप्पड़ी
27. वही , पृष्ठ – 189
28. वही, पृष्ठ -122 पंक्ति 11
29. डी. एस. झा. रेवेन्यू सिस्टम पृ. 45–46
30. रा.शा. शर्मा , इण्डियन फ्यूडलिज्म, पृष्ठ – 14 भूमरा पाषाण स्तम्भ अभि. के लिए द्रष्टव्य का इ0 इ0 3, पेज – 111 पंक्ति 34
31. आर. एन. सलातूर, लाइफ इन गुप्ता एज, बम्बई, 1946 पृष्ठ – 352
32. प्रवरसेन –II का चम्पक ताम्रपत्राभिलेख, जे. एफ. फ्लीट कार्पस इंस्कप्सनम इंडिकारम, भाग–3 पेज – 235
33. डी.सी. सरकार पूर्वोद्धत. भाग–1 पृष्ठ–372 पाद टिप्पड़ी – 7
34. ए. एस. अल्टेकर, राष्ट्रकुटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृष्ठ - 215
35. डी.सी. सरकार. इण्डियन एपिग्राफिकल, ग्लोसटी पृष्ठ - 48
36. फ्लीट कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम, भाग–3 सं0– 38 पृष्ठ –133
37. वही, पृष्ठ – 166
38. वही, पृष्ठ - 169 पाद टिप्पड़ी – 6
39. ओद्रंगमाल वखशकुलिक ....। एपिग्राफिया इण्डिया, भाग– 18, पृष्ठ – 391
40. सोद्रंगसोपरिकारः अचारभटप्रावेश्यो......। वही, भाग – 28 पृष्ठ - 264
41. ए.एस. अल्टेकर वाकाटक गुप्त युग पृष्ठ – 309
42. सोद्रंगः सोपरिकरः यूपमस्य समुचित भाग भोग कर प्रत्यायोप ....। जे.एफ. फ्लीट, कार्पस इंस्कप्सनम इंडिकारम, भाग–3 पृष्ठ – 146
43. यू.एन. घोषाल, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम पृष्ठ – 210
44. जे. एफ. फ्लीट कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम, भाग–3, पृष्ठ – 97-98

45. डी.सी. सरकार इण्डियन एपिग्राफिकल ग्लोसरी, पृष्ठ -349

46. एस.के. मैती पूर्वोद्धत, पृष्ठ – 85

47. जे. एफ. फ्लीट कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम, भाग – 3, पृष्ठ -169 पादटिप्पड़ी 6

48. व्यूलर के मत के लिए द्रष्टव्य कार्पस इंस्कृप्सन्स इंडिकेरम, भाग– 3, पृष्ठ – 97-98 पादटिप्पणी – 6